पानी की खेती

शिवेन्द्र कुमार पांडे

तकरीबन 100 वर्ष पहले भारत के वाइसरॉय लॉर्ड कर्जन ने कहा था कि भारतीय अर्थव्यवस्था मॉनसून के बिसात पर हर साल खेला जाने वाला जुआ है। आज़ादी के 50 साल बाद भी यह बात एक वास्तविकता बनी हुई है। लेकिन क्यों कर?

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहां 70 प्रतिशत जनता आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32 करोड़ 9 लाख हेक्टेयर है। इसमें से केवल 14 करोड़ 2 लाख हेक्टेयर ज़मीन कृषि योग्य है। इस कृषि योग्य ज़मीन का तीन चौथाई भाग सूखा ग्रस्त है जिसमें अगर सिंचाई व्यवस्था स्थापित नहीं की गई तो कृषि उत्पादन मॉनसूनी वर्षा पर निर्भर रह जाता है।

1947 में आज़ादी के समय केवल 1500 भारतीय गांवों में बिजली सेवा उपलब्ध थी और कृषि क्षेत्र में मात्र 6500 बिजली पम्प थे। 1969 में भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विद्युतिकरण योजना आरंभ किए जाने के बाद कृषि क्षेत्र में बिजली पम्पों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई। इसमें हर साल तकरीबन 5 लाख नए पम्प आ मिलते हैं। जनवरी 2000 में कार्यरत पम्पों की संख्या 125 लाख का आंकड़ा पार कर चुकी थी।

इतने ज़्यादा बिजली पम्पों के चलते पिछले तीस वर्षों में सिंचाई व्यवस्था बेहतर हुई है और खाद्यान्न उत्पादन भी तीव्रता से बढ़ा है। इससे भारत ने इस क्षेत्र में आत्मनिर्भरता तो प्राप्त कर ली लेकिन इन प्रयत्नों के बावजूद केवल एक-तिहाई कृषि योग्य भूमि के लिए भूमिगत जल दोहन द्वारा सिंचाई व्यवस्था स्थापित हो पाई है। वर्तमान स्थिति यह है कि 35 प्रतिशत सिंचाई आधारित कृषि भूमि (5 करोड़ हेक्टेयर) से 60 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन होता है और बाकी बची 65 प्रतिशत कृषि भूमि से मात्र 40 प्रतिशत पैदावार होती है, जिसका सारा दारोमदार मॉनसून वर्षा पर निर्भर करता है।

दूसरी ओर दृष्टिपात करने में यह देखने में आ रहा है कि लगातार बढ़ती जनसंख्या की मांगपूर्ति के लिए अन्धाधुन्ध वन कटाई और इतनी भारी संख्या में बिजली पम्पों के ऊर्जायन के फलस्वरूप देशभर में पानी का संतुलन अस्तव्यस्त होता जा रहा है और भूजल स्तर में गिरावट प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। इसका कारण है कि भूजल संचयन व भण्डारण के लिए आवश्यक तरीकों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इस समस्या का समाधान है 'जलसंग्रहण प्रबन्ध कौशल' (वाटरशेड मैनेजमेन्ट) माध्यम से पारिस्थितिक सुधार। इसका मुख्य उद्देश्य होता है भूजल भण्डारों का पुनर्भरण करते रहना व कम से कम नमी का उपयोग करते हुए अधिक कृषि उत्पादन करना।

उल्लेखित संदर्भ में, वाशिंग्टन स्थित 'वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट' द्वारा वर्ष 1998 के अंत में प्रकाशित रिपोर्ट (बियान्ड मेलथस) में कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याख्या आंकड़ों सहित प्रस्तुत की गई है। इस रिपोर्ट के अनुसार अगली सदी के मध्य तक जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप विश्व में पानी की कमी होने लगेगी। यदि जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित नहीं किया गया और वह वर्तमान स्तर पर बढ़ती रही, तो पानी की मांग जलस्रोतों की दीर्घकालीन क्षमता को कम करने लगेगी, क्योंकि उनकी पुनर्भरण (रिचार्ज) क्षमता से अधिक पानी निकासी के कारण उनका जलस्तर घटने लगेगा। फिर पानी की कमी के कारण खाद्यान्न उत्पादन भी कम होता चला जायेगा, क्योंकि विश्व का 40 प्रतिशत खाद्यान्न सिंचाई पर आधारित जल स्रोतों का वर्तमान दोहन, भूजल संचयन क्षमता से दो गुना अधिक हो रहा है।

फलस्वरूप भारत के अधिकांश भागों में भूजल स्तर हर साल 1 से 3 मीटर तक नीचे गिरता जा रहा है। यदि समय रहते इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो कृषि के लिए पानी की उपलब्धता में लगातार कमी होती जाएगी और इसका प्रभाव खाद्यान्नों पर भी पड़ेगा। भारत में वर्तमान खाद्यान्न उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग सिंचाई आधारित कृषि भूमि से

प्राप्त होता है और (इस रिपोर्ट के अनुसार) सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता में कमी के चलते वर्ष 2050 तक भारत में खाद्यान्न उत्पादन घटकर एक-चौथाई रह जाएगा।

भारतीय संदर्भ में उल्लेखित रिपोर्ट की प्रामाणिकता की एक झलक तो वर्ष 2000 के सूखे के रूप में प्रगट हो ही गई है। इस वर्ष अप्रैल/मई के महीनों में महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा आदि में पानी को लेकर हाहाकार मच गया। गौरतलब है कि यह स्थिति भी तब आन पड़ी जब इसके पूर्व के कई सालों तक लगातार अच्छा मॉनसून रहा जिससे खाद्यान्न भण्डार भरपूर थे व भूख से मरने के कहीं कोई आसार नहीं थे। इसलिए इस सूखे को अकाल की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यह तो निश्चित ही पानी के दुरुपयोग से उभरी स्थिति है।

पृथ्वी के अन्दर भूजल संग्रहण एक पानी की टंकी को भरने जैसा है। वर्तमान में हम इस प्राकृतिक टंकी से पानी खींचते चले जा रहे हैं। और उसे भरते रहने की ओर हमारा ध्यान ही नहीं है। लेकिन पृथ्वी रूपी इस टंकी को भरना अब अपरिहार्य बन गया है। पानी भरण की यह क्रिया पानी की खेती (वॉटर हार्वेस्टिंग) नाम से जानी जाती है। यह कोई नई विधि नहीं है। भारत में इसकी परम्परा सदियों से रही है। लेकिन पीने के पानी के लिए पाईप लाइनों के प्रावधान व सिंचाई के लिए डीज़ल/बिजली पम्पों के प्रचलन के चलते गहराई से जल प्राप्त करने की होड़ मच गई। और इस सब में हमने भूजल भण्डार में वृद्धि की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी, पानी की खेती जैसी वैज्ञानिक प्रक्रिया को भुला दिया। इस विधि के अंतर्गत तालाब, बावड़ी व बड़े जलाशय निर्माण, उनकी गहराई व स्वच्छता बनाए रखने को समाज प्राथमिकता देता था। इनका निर्माण व रखरखाव सामूहिक व्यवस्था के माध्यम से होता था। एक व्यावहारिक आकलन के अनुसार यदि भारत के प्रत्येक ज़िले की 3 प्रतिशत भूमि में तालाब बना दिए जाएं, तो पूरे देश का जल संकट समाप्त हो सकता है।

वर्ष 2000 के दौरान सभी सूखा प्रभावित राज्यों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि जिस किसी गांव/शहर ने कुछ वर्ष पूर्व से पानी की खेती की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया था उन्हें इस संकट के समय भी पानी की कमी नहीं हुई थी जबकि आसपास के गांव पानी का संकट झेल रहे थे। सौराष्ट्र (गुजरात) में जूनागढ़ के मेन्दरदा तालुका में ऐसा ही एक गांव है देवगढ़। उत्तर गुजरात व सौराष्ट्र के अन्य सभी गांवों की तरह देवगढ़ ग्रामवासियों ने भी भूमिगत पानी के दोहन के लिए डीज़ल पम्पों का भरपूर इस्तेमाल किया। यह बात 1980 के दशक के मध्य से लेकर 1990 के दशक के शुरूआत की है। इसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि होने लगी और कृषि कार्य ने साल भर के व्यवसाय का रूप ले लिया। लेकिन 10 वर्षों के भीतर ही भूजल-स्तर इतना गिर गया कि सबसे शक्तिशाली पम्प भी पानी खींचने में असमर्थ हो गए। खाद्यान्न उत्पादन तीव्रता से घटता रहा और कृषि एक बार फिर मॉनसून पर निर्भर होने लगी। लगने लगा था कि देवगढ़ वासियों ने वह जादुई फॉर्मुला कहीं खो दिया है जिसने उनकी ग्राम की ज़मीन के दाम को 2000 रुपए प्रति एकड़ से 22,000 रुपए प्रति एकड़ तक पहुंचा दिया।

धीरे-धीरे ग्रामवासियों को इस स्थिति का कारण समझ आने लगा। भूल सुधार की गर्ज़ से उन्होंने

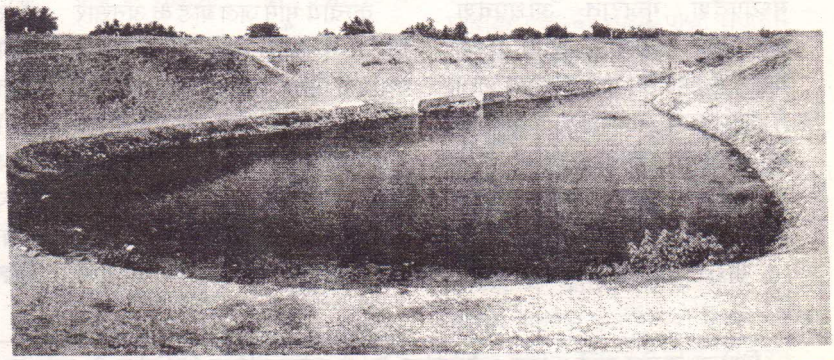

उत्तर अर्काट जिले के आर्कोणम ताल्लुका के वेगामंगलम गांव की पालर नदी पर बनी कासम तालाब। कासम एक लम्बा तालाब है जो नदी के तल से नीचा खोदा जाता है। नदी का पानी रिसकर इसमें पहुंचता है।

संगठित होकर देवगढ़ ग्राम विकास मण्डल की स्थापना की और स्वयं के प्रयास से लगभग 45,000 रुपए का एक बांध-निर्माण कोष स्थापित किया।

अपनी जमा पूंजी व सरकार से आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त कर उन्होंने 1997 के अंत तक अपने क्षेत्र में 4 चेक डैम बनाए। बाद में, 1998 व 1999 के अच्छे मॉनसून ने इन बांधों में पानी का समुचित भण्डार स्थापित कर दिया। इस क्रिया ने पानी के सूख गए भूमिगत स्रोतों को फिर से भर दिया। हालांकि बाद के सालों में इस क्षेत्र में औसत से कम बारिश हुई थी, लेकिन देवगढ़ के निवासियों को इन चेक डैम के कारण पानी की कोई कमी नहीं झेलनी पड़ी। वर्ष 2000 के भीषण सूखे के समय जब सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात के सभी क्षेत्रों में पानी के लिए हाहाकार मचा हुआ था, उस समय भी देवगढ़ के भूजल भण्डार भरे हुए थे। ऐसी स्थिति में उन्हें मात्र अपने पुराने डीज़ल पम्पों का सहारा लेकर पानी प्राप्त करना पड़ा था।

इस प्रकार के कई छुटपुट उदाहरण महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, गुजरात, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान आदि में भी देखने में आए हैं। यहां स्थानीय लोगों ने स्वयं अपने प्रयास से पानी की खेती को अपनाकर अपनी जल आपूर्ति की समस्या का स्थाई समाधान ढूंढ निकाला है।

भारत का तीन-चौथाई भूभाग सूखा ग्रस्त है। इसके अलावा यहां चेरापुंजी जैसे कई अन्य क्षेत्र भी हैं जहां बारिश काफी ज़्यादा होती है फिर भी सूखा पड़ता है। बहुउद्देशीय बांध निर्माण व जलाशयों की दृष्टि से भारत का विश्व में चौथा स्थान होने के बावजूद देश भर में पानी की कमी स्पष्ट दिखाई देने लगी है। इस समस्या का काफी हद तक निवारण वॉटरशेड प्रबंधन व पानी की खेती को अपना कर किया जा सकता है। लेकिन सरकार यह कार्य अकेले नहीं कर सकती है। इसके लिए नागरिकों को आगे बढ़ना होगा। देवगढ़ का कमाल अन्य स्थानों में भी किया जा सकता है। लेकिन ये सभी कार्य विशेषज्ञों की सलाह से किए जाने चाहिए क्योंकि स्थानीय स्थलाकृतिक परिवेश (भू-ढलान दिशा, समोच्च रेखा घेराव, कछार फैलाव आदि) व भू-विन्यास (शिलाओं के प्रकार - जलग्रहण व अवरोधक क्षमता, भूमिगत जलस्रोतों के लक्षण आदि) और स्थानीय मूल की वनस्पतियों के आधार पर ही उस क्षेत्र विशेष के लिए परियोजना निर्माण कर इसका पूरा लाभ पाया जा सकता है।

केन्द्रीय भूमि जल बोर्ड के अनुसार भारत में प्रति वर्ष 432 अरब क्यूबिक मीटर वर्षा का पानी उपलब्ध होता है। इसके संचय से प्रति वर्ष 160 अरब क्यूबिक मीटर अतिरिक्त जल उपयोग के लिए मिल सकेगा और भूजल स्तर में भी वृद्धि होगी। नतीजतन भूमिगत पानी के दोहन में बिजली भी कम खर्च होगी। उदाहरण के लिए भूजल स्तर में 1 मीटर की वृद्धि से 0.04 किलोवॉट प्रति घण्टा बिजली बचाई जा सकेगी। अर्थात वर्ष भर में एक पम्प को दस घण्टे रोज़ाना चलाने पर लगभग 1460 किलोवॉट प्रति घण्टा बिजली की बचत सम्भव होती है।

विश्व पर्यावरण में अबाध रूप से प्रदूषण बढ़ते रहने से पिछले 10-15 वर्षों से मौसम में बदलाव नज़र आने लगे हैं। मौसम में कई तरह की अनियमितताएं देखने में आ रही हैं - जैसे गर्मी बढ़ने लगी है, बेमौसम बरसात होती है, बाढ़ का प्रकोप दिन पर दिन बढ़ रहा है आदि। इसलिए कृषि विकास को सफल बनाने के लिए भारतीय कृषि, भूजल, पर्यावरण व मौसम विशेषज्ञों को कृषकों के अनुभवों का लाभ उठाने के लिए उनसे विचार-विमर्श कर नीतियां बनानी चाहिए। इस प्रकार से बदलते कृषि परिवेश में मौसम के अनुरूप उपयुक्त फसलों का चयन कर उत्पादन कार्यक्रम व लक्ष्यों का लगातार निर्माण करते रहना होगा ताकि मृदा संरक्षण के साथ-साथ उसमें नमी की उपलब्धता को ध्यान में रख अधिक से अधिक खाद्यान्न उत्पादन किया जा सके। इसके अलावा सरकार को खाद्यान्न संचयन (कोल्ड स्टोरेज निर्माण) को प्राथमिकता देनी होगी अन्यथा आलू, प्याज़ आदि के मूल्यों को नियंत्रित रखना कठिन होता जाएगा। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***

शिवेन्द्र कुमार पांडे : एक भूवैज्ञानिक हैं। वे कोल इंडिया लिमिटेड के मवेषणा विभाग से सेवा निवृत्त मुख्य महाप्रबंधक हैं।